महात्मा गांधी की भाषा दृष्टिः एक अवलोकन

डॉ० माईकल
(पी–एच.डी. स्नातकोत्तर)
गांधी विचार विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर
ईमेलः drmaikalbh@gmail.com

सारांश

महात्मा गांधी अपनी प्रकृति में आदर्श वादी पर अपने चिंतन में व्यावहारिक थे। इसलिए उन्हें एक व्यावहारिक चिन्तक और विचारक माना जा सकता है, जिसने भाषा, साहित्य राजनीति, अर्थनीति और जीवन के अनेक प्रश्नों पर अपनी स्वतन्त्र राय व्यक्त की। गांधीजी एक भाशा वैज्ञानिक नहीं थे, फिर भी भारत की भाषा समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने उस हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा बताया जिसका विकास वे हिन्दुस्तानी के रूप में करना चाहते थे। हिंदी का इतिहास देखा जाए तो पता चलेगा कि वह अनेक कालों में अनेक नामों से पुकारी गई। जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत में उसे भाखा कहा। सरहया के जमाने में भी वह भाखा (नौवीं शती तक लगभग) कही जाती थी। उसे हिन्दुई, हिन्दवी और रेख्ता, रुड़ी बोली और हिन्दुस्तानी भी कहा गया। गांधीजी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। महात्मा गांधी का चिंतन अत्यंत ही व्यापक है। यही कारण है कि उनके चिंतन का प्रभाव विश्व के अनेक ख्याति प्राप्त व्यक्तियों पर हुआ। स्वयं गाँधी के चिंतन पर भी विभिन्न धर्मों व चिंतकों का प्रभाव पड़ा है, हिदुस्तानी से महात्मा गाँधी का आशय उस भाषा से था, जिस में हिंदी और उर्दू के अनेक तत्त्वों का मिश्रण हो। हिंदी के तत्त्वों में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, तद्भेव और देशज शब्दों के साथ अनेक बोलियों उपबोलियाँ के शब्द, मुहावरे आदि के साथ प्रचलित उर्दू, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी के शब्द भी शामिल हैं, पर वह अपवाद रूप से देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू के तत्त्वों में फारसी, अरबी शब्दों, मुवाहरा, रूपकों, आदि का बाहुल्य है। यद्यपि उस में संस्कृत के अनेक अपभ्रष्ट रूप शब्द आदि गौण रूप से

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 27.07.2021
Approved: 28.08.2021

डॉ० माईकल

महात्मा गांधी की भाषा दृष्टिः एक अवलोकन

RJPP 2021,
Vol. XIX, No. II,

pp.267-274
Article No. 35

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2021-vol-xix-no-1

शामिल हैं, पर वह अनिवार्य रूप से फारसी लिपि में लिखी जाती हैं। हिन्दुस्तानी में हिंदी और उर्दू के सामान तत्त्वों का मिश्रण अभीष्ट हैं। गांधी हिंदी और उर्दू को मिलाकर एक संयुक्त भाषा को हिन्दुस्तानी नाम देते थे और मानते थे कि हिन्दुस्तानी देवनागरी लिपि और अरबी लिपि दोनों में लिखी जा सकती है।

प्रस्तावना

महात्मा गांधी अपनी भाषा और अपनी जुबान के समर्थक थे, उनका मानना था कि जो बात जिस भाषा में मूल रूप से कही गई है और जिससे वह रची–बसी है, उसी में उसका सही अर्थ समझा जा सकता है। गांधी भाषा के सन्दर्भ में 'हिंदी' के बदले हिन्दुस्तानी शब्द का इस्तेमाल करते थे। भारत की भाषा मानते थे, गांधी की हिन्दुस्तानी में भारत में बोली जाने वाले सभी भाशाएँ और बोलियां शामिल थी, वह इसी भाषा के समर्थक थे। भाषा वही श्रेष्ठ हैं जिसको जनसमूह सहज में समझ ले देहाती बोली सब समझते है। भाषा का मूल करोड़ो मनुष्य रूपी हिमालय में मिलेगा और उसमें ही रहेगा, हिमालय में से निकलती हुई गंगाजी अनंतकाल तक बहती रहेगी, ऐसे ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा और छोटी–सी पहाड़ी से निकलता हुआ झरना सुख जाता है, वैसे ही संस्कृतमयी और फारसीमयी हिंदी की दशा होगी।

गांधीजी ने हिंदी भाशा के विकास के लिए जो कुछ भी किया है वह अतुलनीय है। उन्होंने यह महसूस किया कि पुरे देश को एक सूत्र में बांधने के लिए तथा स्वराज्य प्राप्त करने के लिए एक ऐसी भाषा की जरुरत है जो हिन्द की होगीः हिन्दुस्तान की होगी। इस संबंध में वे कहते हैं कि "हिन्दुस्तानी की आम भाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिंदी है। वह आप को सीखने होगी और हम तो आपके साथ अपनी भाषा में ही व्यवहार करेंगे। गांधीजी मातृभाषा के पक्षधर थे उनका मत था कि स्वदेशी भाषा और संस्कृति की बलि देकर अंग्रेजी नहीं सीखना चाहिए। उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को आगे बढ़ाया– उनके अनुसार बुनियादी शिक्षा मातृभाषा में दी जानी चाहिए।

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मों भयावहः।"

भगवद्गीता का यह वाक्य सभी क्षेत्रों में लागू हो सकता है। स्वभाषा को छोड़कर परभाशा के मोह में पड़ना, बहुत बड़ा द्रोह है। माता, मातृभाषा और मातृभूमि इन तीन में से किसी का भी अपमान स्वाभिमानी मनुष्य कभी सहन नहीं कर सकता।[1] गाँधी की भाषा–दृष्टि दक्षिण अफ्रीका से अधिक उजागर हुई। उनका स्पष्ट मानना था कि राष्ट्र के जो बालक अपनी मातृभाषा के बजाय दूसरी भाषा में शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे आत्महत्या ही करते हैं। वह उन्हें अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करती है। विदेशी माध्यम से बालकों पर अनावश्यक जोर पड़ता है। वह उनकी सारी मौलिकता का नाश कर देती है। विदेशी माध्यम से उनका विकास रुक जाता है और वे अपने और परिवार से अलग पद जाते हैं। गांधी कहते हैं, इसलिए मैं उस चीज को पहले दर्जे का राष्ट्रीय संकट मानता हूँ।[2] भारतीय भाषाओं के प्रति विशेषतः हिन्दी के प्रति गांधी का लगाव भारत आने से पूर्व हो गया था। दक्षिण अफ्रिका के पत्र 'इंडियन ओपिनियन' (1906) में उन्होंने अपनी बात स्पष्ट करते हुए हिंदी को 'मीठी, नम्र, ओजस्वी' स्वीकार किया।

1909 में गांधीजी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में 'शिक्षा' शीर्षक के अंतगर्त अनुक्रमणिका 18 में 'शिक्षा कैसी दी जाय?' इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा है– 'मुझे तो लगता है कि हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चहिए। इसके क्या मानी है, इसे समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी

पुस्तकें काम की है हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सिखाने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिये। हर एक पढ़े–लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाशा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत सिखनी चहिए। उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्तानी के लोगों को तमिल सिखनी चहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छुट रहनी चहिए।[3]

संवादकी शैली में पाठक के द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या स्वराज्य के लिए अंग्रेजी शिक्षा का कोई उपयोग नहीं मानते? उत्तर में गांधी का उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' दोनों हो। शिक्षा एवं भाषा के संबंध में उनकी दृष्टि स्पष्ट थी कि 'करोड़ों लोगों को अंग्रेजी में शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं?[4] स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान 1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत आये तो यहाँ अपने गुरु गोपाल कृष्ण गोखले के परामर्श पर एक वर्ष तक न कहीं भाषण दिया, न लेख आदि द्वारा विशय पर अपने विचार प्रकट करने में जल्दबाजी की। देश की स्थिति को पूरी तरह से समझने में लगाया। उन्होंने सार्वजनिक सेवकों और नेताओं के विचारों और कार्य–पद्धति की गहराई से अवलोकन किया, अपनी शक्ति और मर्यादा का भी हिसाब लगाया। जहां जो कुछ कहना–करना हो, कहें–करें। गांधीजी ने इस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया और पूरी तैयारी कर ली, तब वे कार्यक्षेत्र में उतरे।[5]

गांधी अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर नहीं रहे, वे हिंदी एवं मातृभाषाओं के पक्ष में सदैव रहे। उनका कहना था कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं। अंग्रेजी की शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेजी शिक्षा पाए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम जो कर्ज चढ़ा हुआ है उसका कुछ हिस्सा ही हम अदा करते हैं। हिन्दुस्तान को गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं, बल्कि हम पर पड़ेगी।[6]

'मेरे सपनों का भारत' में वे स्वीकारते हैं कि विदेशी भाषा का बोझ असह्य है। विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पानी में जो बोझ दिमाग पर पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ केवल हमारे ही बच्चे उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी ही पड़ती है। वे दुसरे बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे ग्रेज्युएट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज की शक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नयी योजनाएं नहीं बना सकते।कृ अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए .हमलोग इस नुकसान का अंदाजा नहीं लगा सकते।[7]

गांधी के मन में मातृभाषा के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनका मानना था कि माँ के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और मीठे शब्द सुनायी देते हैं उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाशा द्वारा शिक्षा लेने से टूट जाता है। हम ऐसी शिक्षा के शिकार होकर मातृद्रोह करते हैं। विदेशी भाषा द्वारा मिलाने वाली शिक्षा की हानि यहीं नहीं रुकती। शिक्षित वर्ग औए सामान्य

जनता के बीच में भेद पड़ गया है। आगे वे उम्मीद के साथ कहते हैं कि, जब अंग्रेजी अपनी जगह पर चली जायेगी और मातृभाशा को अपना पद मिल जायगा, तब हमारे मन, जो अभी रूठे हुए हैं, कैद से छूटेंगे औए शिक्षित तथा सुसंस्कृत होने पर भी ताजा रहे हुए दिमाग को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने का बोझ भारी नहीं लगेगा। जब हम मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने लगेंगे, तब हमारे घर के लोगों के साथ हमारा दूसरा ही संबंध रहेगा।[8]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 06 फरवरी 1916 को उन्होंने कहा था, "मैं कहना यह चाहता हूँ कि मुझे आज पवित्र नगर में, इस महान विद्यापीठ के प्रांगण में अपने ही देशवासियों से एक विदेशी भाषा में बोलना पड़ रहा है, यह बड़ी अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है। पिछले दो दिनों में यहाँ जो भाषण दिए गए। यदि उनमें लोगों की परीक्षा ली जाए और मैं परीक्षक होऊं तो निश्चित है कि ज्यादातर लोग फेल हो जाएं। मैं गत दिसंबर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में मौजूद था। वहाँ बहुत अधिक तादाद में लोग इकट्ठे हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि बम्बई के वे तमाम श्रोता केवल उन भाषणों से प्रभावित हुए, जो हिंदी में दिये गये। यदि आप मुझसे यह कहें कि हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किए ही नहीं जा सकते, तब तो हमारा संसार से उठ जाना अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाशा हो सकती है।"[9]

29 मार्च, 1918 में इंदौर के टाउन हॉल में हुए हिंदी साहित्य सम्मलेन के आठवें अधिवेशन के सभापति पद से गांधीजी ने भाषा के बारे में कहा–'भाषा माता के सामान है। पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है।' उक्त अवसर पर गांधीजी ने पंडित मदन मोहन मालवीय जी का पत्र पढ़कर सुनाया, जिसमें उन्होंने अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया था कि हिंदी ही भारत की अन्तरप्रांतीय भाषा है। अंग्रेजी के मोह में फंस गया और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असंतोश हो गया है। पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता मातृभाषा से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता। गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं हमारी प्रजा अज्ञान में डूब रही है। उक्त अवसर पर प्रार्थना करते हुए आग्रह किया कि आप हिंदी को भारत की मातृभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।[10]

गांधीजी हिन्दी भाषा की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, हिन्दी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमय नहीं है, न वह एकदम फारसी से लदी हुई है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालय में मिलेगा और उसमें ही रहेगा। ऐसा ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा। और जैसे छोटी–सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सुख जाता है, वैसी ही संस्कृतमय तथा फारसीमय हिन्दी की दशा होगी।[11]

गांधीजी कहते हैं कि, यह कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेश करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य–भंडार से मैंने बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा के मार्फत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी के ज्ञान को स्थान देना एक बात है। उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है। इन नेताओं को हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेजी के इस मोह से प्रजा पीड़ित हो रही

है। अंग्रेजी शिक्षा पानी वालों के ज्ञान का लाभ बहुत ही कम मिलता है, और अंग्रेजी से शिक्षित–वर्ग और आम लोगों के बीच बड़ा दरिया आ पड़ा है।[12]

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि भाषा के रूप में अंग्रेजी के प्रति गांधीजी के भीतर कोई विरोध भाव नहीं था। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा और कूटनीति की भाषा के रूप में वे उसकी उपयोगिता को मान्य करते थे। अंग्रेजी से उनकी खिलाफत असल में इस बात को लेकर थी कि वह इस देश में जिस पद के योग्य नहीं, उसको हड़पने की कोशिश कर रही थी। 'यंग इंडिया' के 2 फरवरी, 1921 के अंक में उन्होंने लिखा था, 'अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, वह संबंधों की कूटनीति की भाषा है, उसके साहित्य का भंडार बहुत बड़ा और सम्पन्न है, इसके द्वारा हमें पश्चिमी विचारों और सभ्यता की जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए हममें से थोड़े से लोगों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान जरुरी है। ये लोग राष्ट्रीय व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को चला सकते हैं और देश को पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान और साहित्य एवं विचारों की श्रेष्ठम उपलब्धियों का ज्ञान करा सकते हैं। यही अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा। मगर आज तो उसने हमारे मन–मन्दिर में सबसे ऊँचा स्थान बना रखा है और मातृभाषा को उसके उचित स्थान से च्युत कर दिया है।[13]

'हिन्द–नवजीवन' 2 सितम्बर, 1921 में उन्होंने वर्णन किया है कि, विदेशी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने ही घर में पूरा विदेशी बना दिया है। यह वर्तमान शिक्षा–प्रणाली का सबसे करूण पहलू है। विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओं की प्रगति और विकास रोक दिया है। अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिये हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ या उन्हें बरखास्त कर दूँ। मैं पाठ्यपुस्तकों की तैयारी का इन्तजार नहीं करूंगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे–पीछे चली आयेंगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए।[14] कोई भी देश नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बन सकता।[15]

हरिजन सेवक, 25 अगस्त, 1946 में गांधीजी ने लिखा है कि, मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूंगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवन प्रदान करनेवाला दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजी को उसकी अपनी जगह प्यार करता हूँ। लेकिन अगर वह उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसका वह हकदार नहीं है, तो मैं उससे सख्त नफरत करूंगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी कुछ चुने हुए लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों करोड़ों की नहीं। आज जब हमारे पास प्राथमिक शिक्षा को देश में अनिवार्य बनाने के साधन नहीं हैं, तो हम अंग्रेजी सीखाने के साधन कहाँ से जुटा सकते हैं? रूस ने बिना अंग्रेजी के, विज्ञान में उन्नति कर ली है। आज हम अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही यह मानने लगे हैं कि, अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मैं काम शुरू करने से पहले ही हार मान लेने की इस निराशापूर्ण वृत्ति को कभी स्वीकार नहीं कर सकता।[16]

1918 एवं 1935 के इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता गांधी के द्वारा की गई थी। 1918 में ही उन्होंने दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के लिए अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास को मद्रास भेजा था और तब से स्थापित 'दक्षिणभारत हिंदी प्रचार सभा' आज भी दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार–प्रसार जोर–शोर से कर रही है। आज हिन्दी का दक्षिण में जिन कारणों से विरोध हो रहा है, उसमें मुख्य कारण राजनैतिक है। 1935 के इंदौर अधिवेशन के बाद दक्षिण के अलावा अन्य अहिन्दी

प्रान्तों में हिन्दी प्रचार के लिए बापू नर वर्धा में 1936 में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की थी और उसके माध्यम से कार्य प्रारंभ कर दिया था। परन्तु 1941 में उसी हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बापू की हिंदी की परिभाषा में उर्दू को अस्वीकार कर दिया। तब बापू ने 1942 में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा की स्थापना की और दोनों लिपियों में राष्ट्रभाषा प्रचार का काम प्रारंभ किया।[17]

गांधी के भाषा विशयक–चिंतन से तीन महत्वपूर्ण सूत्र प्राप्त होते हैं– (1) जनहित, समाजहित और राष्ट्रहित (2) राष्ट्रीय अस्मिता एवं स्वाभिमान (3) राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता।[18]

स्वाभिमान के साथ स्वभाषा के गांधीजी जीवनपर्यंत पक्षधर रहे। अतः स्वतंत्रता के बाद गांधी का स्वतंत्रा दिवस 15 अगस्त, 1947 को बी.बी.सी. लन्दन को दिया सन्देश था– 'दुनिया को कह दो की गांधी अंग्रेजी नहीं जानता। गांधी की यह तीखी प्रतिक्रया इसलिए थी कि वे महसूस कर रहे थे कि, राजनितिक स्वाधीनता देश की सम्पूर्ण स्वाधीनता नहीं है। भाषाई गुलामी से मुक्ति फिर बिना देश पराधीनता की गिरफ्त में आ जाएगा। आजादी के पहले एक बार श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने कहा था 'मुझे देश की आजादी और भाषा में से किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निःसंकोच भाशा की आजादी चुनूँगा। क्योंकि मैं फायदे में रहूंगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा गुलाम रह सकती है, लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता।[19]

1947 के दितम्बर की 14 तारीख को हमारी संविधान सभा ने देवनागरी में हिंदी को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया, परन्तु साथ–साथ संविधान की 351 वीं धारा में स्पष्ट लिखा गया है कि, हिंदी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामायिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लेखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां तक आवश्यक या वांछित हो वहाँ उसके शब्द–भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।[20]

गांधीजी के अनुसार अंग्रेजी–शिक्षा से रटने तथा अनुकरण करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। इससे मस्तिष्क पर अनावश्यक रूप से तनाव पड़ता है तथा व्यक्ति की स्वतन्त्र चिंतन–शक्ति अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का उपयोग न तो व्यक्तिगत जीवन में हो पाता है और न सामाजिक जीवन में ही। यह अपनी ही भूमि पर बच्चों को विदेशी बना देती है।[21] इससे मातृभाषा का विकास नहीं हो पाता। परन्तु यह अर्थ नहीं कि गांधीजी अंग्रेजी शिक्षा का भारत भूमि से उन्मूलन करना चाहते हैं। वे अंग्रेजी भाषा के उचित महत्त्व को स्वीकार करते है। गांधीजी की अंग्रेजी शिक्षा–पद्धति की आलोचना को कई समसामयिक शिक्षा शास्त्रियों ने अपने–अपने ढंग से स्वीकार कर बुनियादी शिक्षा का समर्थन किया है। पाउलो फ्रयारे के अनुसार, शिक्षा स्वतंत्रता के लिए सांस्कृतिक कार्य है, अतः यह ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया है न कि स्मरण की क्रिया।[22] वर्तमान शिक्षा पद्धति को एक बैंकिंग व्यापार माना जा सकता है।

भाषा माता के समान है। माता पर जो हमारा प्रेम होना चाहिये, हिन्दू–मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। जैसी ही कृत्रिमता हिंदी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिन्दुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों स्वाभाविक संगम गंगा–जमुना के संगम–सा शोभित और अचल रहेगा। अंग्रेजी

भाषा से द्वेश नहीं करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य–भण्डार से भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मारफत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है, लेकिन जिन भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है। समूचे हिन्दुतान के साथ व्यवहार करने लिये हम को भारतीय भाषाओं में से एक जैसी भाषा या जबान की जरुरत है, जिसे आज ज्यादा–से–ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी के लोग जिसे झट सीख सकें। जिसमें शक नहीं कि हिंदी जैसी ही भाषा है। उत्तर के हिन्दू और मुसलमान दोनों इस भाषा को बोलते और समझते है। यही बोली जब उर्दू लिपि में लिखी जाती है, तो उर्दू कहलाती है। राष्ट्रीय महासभा सन् 1925 के अपने कानपुर वाले जलसे में मंजुर किये मशहूर ठहराव में सारे हिन्दुस्तान की इसी बोली को हिन्दुस्तानी कहा है। और तबसे, उसुलान् ही क्यों न हो, हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा या कौमी जबान मानी गई है। हिन्दुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा बनानी में हमारा हित है।

गांधी युग और स्वतंत्रता–आन्दोलन के बाद आज देश में हिंदी की स्थिति बहुत संतोशप्रद नहीं है। प्रादेशिक भाषा एवं अंग्रेजी भाषा का फैलाव हिंदी की अपेक्षा हुआ है। हालांकि हिंदी प्रादेशिक भाषा का पक्षधर रही है। एक तरफ हम हिंदी की संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान दिलाने की बात करते हैं और दूसरी ओर अपने देश में ही हम उसे योग्य स्थान नहीं देते हैं। पहले तो हमें उसे व्यवहार में लाना होगा और जहाँ–जहाँ अंग्रेजी है, वहाँ–वहाँ हिंदी को स्थान देना होगा। भारतेंदु ने कहा भी है–

"निज भाषा उन्नति अहै। सब उन्नति को मूल।
पै निज भाषा–ज्ञान के मिटत न हिय के शूल।।"

सन्दर्भ

1. शाह, दशरथलालः रचनात्मक कार्यक्रम : वर्त्तमान सन्दर्भ में, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002. पृ. 58.
2. गांधीजी; शिक्षा का माध्यम, 'विथ गांधीजी इन सिलोन' नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1994. पृ. 38.
3. गांधीजी; हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1949, पृ. 74.
4. वही, पृ. 72.
5. शाह, दशरथलाल, पूवोक्त, पृ. 02.
6. गांधीजी; हिन्द स्वराज, पूर्वोक्त, पृ. 73.
7. गांधी; मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त), सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2004. पृ. 92–93.
8. वही, पृ. 93.
9. सम्पूर्ण गांधी, वांग्मय; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, खण्ड–13, पृ. 213.
10. वही, पृ. 277–278.
11. वही, पृ. 279.
12. वही, पृ. 279.
13. सम्पूर्ण गांधी वांग्मय; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, खंड–19. पृ. 319–320.
14. गांधीजी; शिक्षा का माध्यम, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1959, पृ. 12.

15. यंग–इंडिया, 27–04–1921.
16. हरिजन सेवक, 25–08–1946.
17. शाह, दशरथलाल, पूर्वोक्त, पृ. 64.
18. राय, त्रिभूवन; राजभाषा हिन्दी, प्रगति और प्रयास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 184–185.
19. भारत का संविधान, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1959, पृ. 131.
20. सिंह, विजय बहादुर; वागर्थ, दिसंबर, 2009, पृ. 79.
21. यंग इंडिया, 1–9–1921, पृ. 276.
22. सिंह, दशरथः गांधीवाद को विनोबा की देन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1975, पृ. 568.